योग शिक्षा

(खण्ड-दो)

अध्याय 1

योग परिचय

योग एक स्वस्थ जीवन जीने की कला तथा तन-मन को निर्मल, निरोगी एवं स्वस्थ रखने का विज्ञान है। योगाभ्यास दैनिक तनावों से विद्यार्थी को मुक्त कर अपनी शक्ति के व्यर्थ व्यय से बचाता हैं। ज्ञान ग्रहण करने के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है, योग एकाग्रता प्राप्ति का साधन है। योग विद्यार्थी जीवन को अनुशासित एवं सुसंस्कारित बनाकर उसकी अंत:शक्तियों को जागृत करता है।

कर्म के बिना मनोरथ सफल नहीं होते किन्तु इसके लिए हमें एक समुचित एवं स्वस्थ कार्यशैली अपनानी होती है और वह प्राप्त होती है योग से। कहा भी गया है कि — ''योग: कर्मसु कौशलम्''। अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है।

किसी भी कार्य को सफलता तक पहुँचाने हेतु दृढ़ संकल्प, भावनाओं पर नियंत्रण, समर्पण आदि की आवश्यकता होती है। योगाभ्यास इन्हें विकसित करने की विद्या है।

हमारे प्रयत्न एवं प्रयास नियमित एवं दीर्घकालीन होने चाहिए। यह भी योगाभ्यास का ही फल है।

इस प्रकार योग विद्या वह विद्या है जो आत्म-विकास एवं आत्म-शिक्षा प्रदान कर व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कराती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व की क्षमता के कारण हम किसी भी क्षेत्र में विकास एवं प्रगति प्राप्त कर सकते हैं।

संक्षेप में कहें तो योग एक ऐसा दर्शन है जो जीवन को समग्र रूप से देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

यही कारण है कि आज पूरे विश्व में 'योग' ने एक परिपूर्ण एवं वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनी पहचान बनाई है। विगत कुछ ही वर्षों में आरोग्य एवं वैयक्तिक विकास के साधन के रूप में योग की लोकप्रियता पर्याप्त मात्रा में बढ़ी है। इसके साथ ही पारम्परिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। योग एवं स्वास्थ्यप्रद योगाभ्यासों की लोकप्रियता के कारण योग-चिकित्सा, योग-विज्ञान तथा योगदर्शन में भी रुचि जागृत हुई है। वर्तमान कालावधि में प्रतिष्ठित चिकित्सा साहित्य में, योग-चिकित्सा के विविध लाभों के विषय में अनेक शोधलेख प्रकाशित हुए हैं।

योग शब्द की व्युत्पत्ति

योग शब्द संस्कृत के युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगाने पर बना है। जिसको जोड़ना, मिलाना, संयुक्त करना एवं व्यवस्थित करना इत्यादि अनेक अर्थ हैं। योग शब्द 'युजि' धातु से भी निष्पन्न है, जिसका अर्थ है 'समाधि' अर्थात् 'आत्मसाक्षात्कार'। समाधि से तात्पर्य है चित्त की एकाग्रता। एकाग्रता की पराकाष्ठा ही योग है। एकाग्रता

द्वारा ही मनुष्य विश्व चेतना से जुड़ता है, जो विश्व बंधुत्व की भावना को जन्म देता है।

योग शब्द का अर्थ

युज् भावादौ प्रत्यय करने से योग शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ- जोड़ना, मिलाना, मिलाप, सङ्गम, मिश्रण आदि होता है। वृहत् हिन्दी कोष के अनुसार योग शब्द का अर्थ है जोड़ने का कार्य संयोग, सम्बन्ध, सम्पर्क, युक्ति, उपाय, नियम, विधान, सूत्र मेल-मिलाप, चित्तवृत्ति का निरोध आदि।

योगरत्न शिरोमणि महर्षि पतञ्जलि के 'योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के अनुसार चित्त, वृत्तियों के निरोध को (चित्त में उठने वाले भाव(वृत्ति) को सर्वथा रोक देना)योग कहते हैं।

इस प्रकार योग का वास्तविक अर्थ उस विधि से है, जिसमें साधक अपने प्रकृतिजन्य विकारों को त्यागकर अपनी आत्मा के साथ संयुक्त होता है।

योग हमारी अमूल्य धरोहर है, जो अनादिकाल से ऋषियों के मध्य प्रचलित था। योग सारे सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के पक्षपात और वाद-विवाद से रहित सार्वभौम धर्म है, जो तत्व का ज्ञान स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करना सिखलाता है।

भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्वपूर्ण शब्द है। आत्मदर्शन एवं समाधि से लेकर कर्म क्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है।

व्याकरण शास्त्र के अनुसार योग- 'युज' धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ है- जुड़ना है। यहाँ जुड़ने का आशय शरीर का मन से , मन से मन का तथा आत्मा का परमात्मा से जुड़ना है।

योग स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना है।

''योग कोई विस्मृत पौराणिक गल्प नहीं है। यह तो एक बहुमूल्य विरासत है। यह वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की संस्कृति है।''

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

1.1 योग प्रार्थना

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः-

अर्थ

हे परमात्मा। आप, हम गुरू-शिष्य दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें। हम दोनों का आप साथ-साथ समुचित रूप से पालन-पोषण करें। हम दोनों साथ ही साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करें। हम दोनों की अध्ययन

की हुई विद्या तेजपूर्ण हो। कहीं किसी से हम विद्या में परास्त न हों। हम दोनों जीवन भर परस्पर स्नेह सूत्र में बंधे रहें। हमारे अन्दर परस्पर द्वेष न हो।

"प्रार्थना से हृदय की खोयी हुई शक्ति आसानी से जाग उठती है। अत: उसे जागृत करने का सशक्त माध्यम प्रार्थना ही है।"

– स्वामी विवेकानंद

प्रार्थना का शाब्दिक अर्थ है, उस सर्वशक्तिमान संसार के नियन्ता से याचना करना परन्तु उसमें न दीनता है, न दासता है, न भीख है, न स्वार्थ है। यह तो आत्मनिवेदन है, समर्पण है, वंदना है, अर्चना है। इसी अर्चना में बालक तन्मय होकर उस परमसत्ता से अपने लिए ज्ञान, शक्ति और भक्ति आदि माँगता है, वह कामना करता है कि–"वह उसे अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले जाए।"

बालक जब नित्य प्रति शुद्ध अंत:करण परमात्मा से प्रार्थना करता है तो उसके मन से मलीनता की परतें एक-एक करके हटती जाती हैं। मन शुद्ध एवं निर्मल बन जाता है, एकाग्रता का विकास होता है और उस परम सत्ता के सान्निध्य की अनुभूति करता हुआ अपने लक्ष्य और उद्देश्य की ओर सहजता से अग्रसर होता जाता है।

इसीलिए भारतीय ही नहीं अपितु सभी संस्कृतियों में प्रत्येक शुभ कार्य का शुभारम्भ इष्ट की प्रार्थना के साथ किया जाता है, सफलता प्राप्ति हेतु।

कक्षा का प्रारम्भ भी एक शुभ कार्य है। इसलिए आवश्यक रूप से विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों को ही शुद्ध सात्विक वातावरण निर्मित करने के लिए कठोपनिषद् की प्रार्थना का अभ्यास नियमित करना चाहिए।

"प्रार्थना धर्म का निचोड़ है। प्रार्थना याचना नहीं है। आत्मा की पुकार है। वह भीतर चलने वाले अनुसंधानों का नाम है।"

– महात्मा गांधी

1.2 आसन एवं व्यायाम में अंतर

प्राय: लोग आसनों को शारीरिक व्यायाम के रूप में मानते हैं या व्यायाम के साथ उनकी तुलना करते हैं, परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि दोनों की प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं। आसन और व्यायाम के अंतर को निम्नानुसार समझ सकते हैं —

आसन	व्यायाम
1. आसनों का अभ्यास धीरे-धीरे किया जाता है, इनके करने से थकान का अनुभव नहीं होता।	1. व्यायाम करने की गति तेज होती है, थकान का अनुभव होता है।
2. आसनों का अभ्यास सामान्य श्वास में किया जाता है, इनका अभ्यास क्षमतानुसार रुक-रुक कर किया जाता है।	2. श्वास सामान्य से अधिक होती है। अभ्यास निरंतर तब तक करते रहते हैं जब तक शरीर थक न जाए।
3. आसन अभ्यास के दौरान माँसपेशियों में खिंचाव	3. व्यायाम से शरीर गठीला एवं सौष्ठव युक्त बनता

होता है जिससे शरीर में लचीलापन बढ़ता है तथा स्फूर्ति का अनुभव होता है। किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती।	और माँसपेशियाँ कठोर होती हैं। व्यायाम के लिए डम्बल आदि अनेक उपकरणों की आवश्यकता होती है।
4. आसनों के अभ्यास के लिए आयु बंधन नहीं है, अर्थात् हर उम्र का व्यक्ति आसन का अभ्यास कर सकता है।	4. व्यायाम, अधिक आयु में करने में कठिनाई होती है।
5. शारीरिक ऊर्जा का क्षरण कम होता है।	5. ऊर्जा अधिक खर्च होती है।
6. आसनों के अभ्यास में सामान्य आहार की आवश्यकता होती है।	6. व्यायाम करने पर अतिरिक्त आहार की आवश्यकता होती है।
7. आसनों का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव होता है।	7. व्यायाम से शारीरिक स्तर पर ही सुधार होता है।
8. आसनों के लिए साफ सुथरे स्थान एवं शान्त वातावरण की आवश्यकता होती है।	8. व्यायाम के लिए स्थान विशेष एवं सामग्री विशेष की आवश्यकता होती है।

1.3 आहार और व्यवहार में सम्बन्ध

आहार और व्यवहार का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। आहार भी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार सात्विक, राजसिक, तामसिक तीन प्रकार का होता है। आज भक्ष्याभक्ष्य का विचार न कर मनमाने तरीके से आहार किया जा रहा है। जिसका परिणाम परस्पर कटुता, द्वेष, लड़ाई, विविध दु:ख, शोक और रोग के रूप में हमारे सामने हैं।

आजकल वैज्ञानिक भी स्वीकारते हैं कि शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारियों की उम्र कम होती है। आचार्य सुश्रुत ने हितभुक् मितभुक् और ऋत भुक् को श्रेष्ठ माना है। (हितकारी, कम और ऋतु के अनुसार) भक्षित अन्न का स्थूल भाग मल के रूप में परिवर्तित होकर बाहर निकलता है। मध्य भाग से शरीर विविध पुष्टि एवं सूक्ष्म भाग के, प्रथम सत् भाग से मन का निर्माण होता है।

इसीलिए कहा गया है- जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन, जैसा मन होगा वैसा ही आचरण व्यक्ति करेगा। श्रमार्जित धन एवं शुद्धता का मानव मन पर श्रेष्ठ प्रभाव रहता है।

शास्त्रों की सारभूत श्रीमद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के आहार बताये हैं:-

1. सात्त्विक 2. राजसिक 3. तामसिक

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।[1]

कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दु:ख, चिंता तथा रोगों को उत्पन्न करने

वाला आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ, राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।[2]

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिवर है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।[3]

इस प्रकार व्यवहार में सुख और प्रीति की बुद्धि के साथ ही बल, बुद्धि और आयु भी बढ़ाने के लिए सात्विक आहार आवश्यक है। दीपक अंधकार को खाता है, काजल उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जो जैसा अन्न खाता है, उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) भी वैसी ही होती है। आहार का व्यावहारिक सम्बन्ध केवल मानव तक ही सीमित नहीं रहता अपितु प्राणी मात्र के लिए होता है।

संदर्भ

1. आयुः सत्त्वबलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः।
   रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्या आहाराः सात्त्वि प्रियाः।।
2. कट्वक्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष-विदाहिनः।
   आहारा-राजसस्येष्टा दुःखशोकामय-प्रदाः।।
3. यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
   उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम्।।

1.4 योग और स्वास्थ्य

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कर्म, धर्म का मूल आधार शरीर है। संसार का हर व्यक्ति सुखी रहना चाहता है। सुखी रहने के लिए शरीर और मन का स्वस्थ होना प्राणी मात्र के लिए आवश्यक है। संसार में बहुत कम ऐसे भाग्यशाली होंगे जिनके तन और मन दोनों स्वस्थ हों। भौतिक साज-सामानों या खाद्य वस्तुओं का चाहे जितना संग्रह कर लिया जावे, यदि उनका उपयोग करने के लिए हमारा तन-मन तैयार नहीं है, तो ये सब साधन व्यर्थ हैं। पद, प्रतिष्ठा, अधिकार और धन से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता। चेहरे को सुंदर बनाने के लिए अनेकों सौन्दर्य प्रसाधन हैं, किंतु अंदर के वास्तविक सौंदर्य अर्थात् मन को सुन्दर बनाने के लिए एकमात्र रास्ता योग ही है। योग, तन और मन दोनों को स्वस्थ रखने की राह बताता है।

किसान, मजदूर, कुली, रिक्शा चालक, पैदल चलने वालों का तो श्रम हो जाता है, किंतु अध्यापक-छात्र, लेखक, पत्रकार, वकील, नेता, कर्मचारी, व्यापारी आदि बुद्धिजीवी वर्ग का शारीरिक श्रम नहीं हो पाता केवल मानसिक श्रम ही अधिक होता है। फिर ऐसे लोगों का भोजन कहाँ हजम होगा? भोजन नहीं पचने से रक्त कैसे बनेगा? भोजन पाचन ठीक से नहीं होना अनेक रोगों की जड़ है। निरंतर मानसिक तनाव झेलने वाले व्यक्ति की पाचन क्रिया, रक्त संस्थान, स्नायविक संस्थान, मल विसर्जन क्रिया, श्वास-प्रश्वास, हृदय, पित्ताशय, अग्नाशय

आदि की कार्य प्रणाली में अवरोध उत्पन्न होता है।

योग में जहाँ शरीर में लचीलापन आता है तथा आवश्यक परिश्रम की पूर्ति होने से भोजन आसानी से पचता है वहीं दूसरी ओर यम-नियम के आचरण से व्यक्ति संयमित होता है। संयम अतिभोग से बचाता है एवं परिश्रम से भूख तेज होती है। अत: अच्छे स्वास्थ्य के लिए संयम एवं परिश्रम दोनों आवश्यक है।

विविध प्रकार के प्रदूषणों से विश्व में हिंसा, युद्ध, आतङ्कवाद से जीव मात्र व्यथित है। सुखी जीवन जीने के लिए और अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए, व्याधि एवं वृद्धावस्था से बचने के लिए हमारे प्राचीन ऋषियों की देन योग विद्या को ही अपनाना होगा। योग के विषय में कहा है-

न तस्य रोगो, न जरा न व्याधि:।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

अर्थात् योग साधक के शरीर को रोग, व्याधि और बुढ़ापा भी दुष्प्रभावित नहीं कर सकते। योग से ही व्यक्ति का तन-मन स्वस्थ होगा और तन-मन के स्वस्थ रहने पर ही वह भौतिक साधनों का समुचित उपयोग कर जीवन को सुखी-समृद्ध बनाने में समर्थ होगा।

"योग का मानवता के लिए एक पूर्ण संदेश है। योग का मानव शरीर के लिए संदेश है। उसका मानव-मन और मानव-आत्मा के लिए भी संदेश है, तो क्या सुबुद्ध और सुयोग युवक इस संदेश को, केवल भारत के ही नहीं अपितु विश्व के अन्य सभी भागों के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए आगे आवेंगे?"

– स्वामी कुवलयानन्द

प्रश्न-1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. योग.....कौशलम्।
2. प्रार्थना.....की पुकार है।
3. वैज्ञानिकों के अनुसार शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारियों की उम्र .....होती है।

प्रश्न-2 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

1. 'वर्तमान परिपेक्ष्य में व्यायाम की तुलना में योग अधिक उपयोगी है' कैसे?
2. आसन एवं व्यायाम में कोई पाँच अंतर लिखें।
3. मन एवं आध्यात्म की उन्नति के लिये आसन तथा व्यायाम में कौन अधिक उपयोगी है?
1. आहार कितने प्रकार का होता है? लिखिये
2. एक योगाभ्यासी को किस प्रकार का आहार लेना चाहिए?
3. मन या व्यवहार का निर्माण कैसे होता है?
1. योग शब्द का अर्थ स्पष्ट करें?
2. योगासन और प्राणायाम में कोई पाँच अन्तर समझाइये।